

शिक्षा की सैद्धांतिक समझ को लेकर दो प्रकार के मत हैं - एक, कार्य को सही दिशा देने के लिए यह अत्यावश्यक है। दूसरे, कक्षा में पढ़ाने की पद्धति की स्पष्टता से ही काम चल सकता है।

वर्तमान समय में शिक्षा की चुनौतियों को समझने के लिए वैचारिक स्पष्टता आवश्यक है, हालांकि इसकी रफ्तार धीमी होती है। अतः आवश्यक हो जाता है कि शिक्षा संवाद को आवृत्तिक रूप से गहरा किया जाए। विषय की प्रकृति एवं तदनुरूप पद्धति को सहभागी प्रक्रिया से समझने का प्रयास इस रपट में दर्शाया गया है। प्रशिक्षणों एवं कार्यशालाओं के अतिशय दौर में जबकि सब कुछ 'मॉड्यूल' केन्द्रित हो रहा है और शिक्षक तथा शिक्षा की समस्याओं को फोरी तौर पर देखा जा रहा है, रपट पुरानी होने के बावजूद इस तरह के अलग प्रयासों की प्रासंगिकता को रेखांकित करती है।

अच्छी शिक्षा - कुछ शिक्षणशास्त्रीय प्रश्न

□ कमलेश चन्द्र जोशी

यू तो प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में देश भर में कई गैर-सरकारी संस्थायें काम कर रही हैं। लेकिन अच्छी शिक्षा व उससे जुड़े मुद्दे को लेकर संस्थाओं का अलग-अलग नजरिया रहा है। संस्थाओं के इस नजरिए में बहुत स्पष्ट सोच कुछ ही संस्थाओं में मिल पाती है। संस्थाओं की तरह-तरह की सोच के अनन्य कारण रहे हैं। इन कारणों में से एक कारण यह भी रहा है कि गैर-सरकारी शैक्षिक संस्थाओं में इन मुद्दों को लेकर आपसी संवाद विगत समय में बहुत कम हुए हैं। आज के समय में इस तरह के संवाद की काफी जरूरत महसूस की जा रही है।

वर्तमान समय में देश में सभी बच्चों की शिक्षा को लेकर एक महत्वाकांक्षी कार्यक्रम - सर्व शिक्षा अभियान, भारत सरकार द्वारा संचालित किया जा रहा है तथा सभी बच्चों को स्कूल लाने व उन्हें 'गुणात्मक शिक्षा' उपलब्ध कराने की बात जोर-शोर से की जा रही है। दूसरी तरफ देश में चल रही वैश्वीकरण व बाजारीकरण की नीतियों का प्रभाव भी देश की शिक्षा व्यवस्था पर काफी पड़ा है। जिससे शिक्षा में गुणात्मकता के नए-नए मानक निर्धारित किए जा रहे हैं। कोई प्राइवेट व पब्लिक स्कूलों की शिक्षा व्यवस्था को गुणात्मक शिक्षा बता रहा है तो कोई आरम्भ से ही कम्प्यूटर एवं अंग्रेजी शिक्षा को गुणात्मक शिक्षा मान रहे हैं। परन्तु प्राथमिक शिक्षा के मूलभूत मुद्दों पर सरकारी व गैर-सरकारी हलकों में कोई विशेष चर्चा नहीं होती। इस संदर्भ में प्राथमिक शिक्षा के मुद्दे पर काम कर रही विभिन्न संस्थाओं के बीच विचार-विमर्श, तालमेल

व समन्वय हेतु पहल की आवश्यकता महसूस होती है। जिससे प्राथमिक शिक्षा में गुणात्मक सुधार के कुछ बेहतर प्रयास व शैक्षिक विमर्श के मुद्दे बड़े स्तर पर उभर कर आ पाएं तथा कुछ शिक्षणशास्त्रीय विकल्पों की तलाश भी हो पाए। इस परिप्रेक्ष्य में विद्या भवन सोसाइटी, उदयपुर द्वारा विगत 24-31 दिसम्बर, 2003 के मध्य एक आठ दिवसीय 'कॉम्प्रिहेंसिव वर्कशाप' का आयोजन किया गया। इस आयोजन को गैर-सरकारी संस्थाओं के बीच शैक्षिक संवाद की पहली कड़ी के रूप में देखा जा सकता है।

यहां प्रस्तुत उक्त कार्यशाला की रपट में अर्जित अनुभवों व समझ को संक्षेप में रखने का प्रयास किया गया है। ध्यात्व्य है कि कार्यशाला में उभरे मुद्दों पर स्पष्ट समझ बनाने में प्रत्येक संस्था को समय लगेगा तथा इसके लिए प्रत्येक संस्था के अंतर्गत आगे भी सोचने-विचारने, पढ़ने-लिखने एवं विचार-विमर्श करने के दौर आवश्यक होंगे, तभी शैक्षिक संस्थायें अपने काम को बेहतर अंजाम दे पायेंगी और इस कार्यशाला को इसके प्रस्थान बिन्दु के रूप में देखा जाना चाहिए।

सर्वप्रथम, कार्यशाला के सत्र 'शिक्षा और ज्ञान' से बात शुरू करें - इसके अंतर्गत शिक्षा और ज्ञान का संबंध, ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया, प्राथमिक स्तर पर पढ़ाए जाने वाले विषयों - गणित, विज्ञान, सामाजिक अध्ययन, भाषा आदि की प्रकृति पर चर्चा हुई तथा इन विषयों में ज्ञान निर्माण प्रक्रिया की झलक प्राथमिक स्तर पर बच्चों को कैसे दें ? इस सन्दर्भ में दिशा देने का प्रयास किया

गया। इसके अंतर्गत प्रतिभागियों के समूह बनाकर कुछ कथन दिए गए जिसकी सत्यता की जांच का कार्य प्रत्येक समूह में आपसी चर्चा द्वारा करना था। इसके अंतर्गत कथन कुछ इस प्रकार थे - दो सौ पचहत्तर और पांच सौ तैंतालिस का गुणनफल एक लाख उन्तालीस हजार तीन सौ पच्चीस होता है, प्रकाश की गति ध्वनि की गति से कई गुना कम होती है, राणा प्रताप का जन्म उदयपुर में हुआ था, महिलाओं की पोशाकों में साड़ी दुनिया की सबसे खूबसूरत पोशाक है, अगर भगवान होता तो धर्म जैसी धूर्तता कभी शुरू नहीं होने देता, दो समानान्तर रेखाओं को एक तिर्यक रेखा के काटने पर बनने वाले एकान्तर कोण आपस में बराबर होते हैं, ये आम मान्यता है कि सत्ता और धन प्राप्त करने के लिए धोखेबाजी का सहारा लेना पड़ता है, अतः धोखेबाजी करना उचित है, हिन्दी भाषा में क्रिया कर्ता के लिंग के अनुसार बदलती है, भारत के जिन जाति समुदायों में विधवा विवाह होते हैं, उनमें सती प्रथा नहीं के बराबर रही है। इन कथनों की सत्यता की जांच से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया कि गणित, विज्ञान, सामाजिक अध्ययन, भाषा, धार्मिक आस्था व मूल्यों में किस तरह ज्ञान निर्माण होता है तथा एक अनुशासन का ज्ञान दूसरे अनुशासन के ज्ञान से किस प्रकार भिन्न है। समूह चर्चा के दौरान यह स्पष्ट करने की कोशिश की गई कि गणित में कुछ अमूर्त संकल्पनाएं होती हैं, उनकी पहले से निर्धारित परिभाषा होती है तथा उनके बारे में कुछ स्थापित सत्य होते हैं। इसे समझने के लिए शिक्षा-विमर्श, अप्रैल-मई 2002 में प्रकाशित इसराइल शेफलर के लेख 'ज्ञानमीमांसा और शिक्षा' को पढ़ाया गया। इसका एक अंश यहां उद्धृत किया जा रहा है -

“इनकी स्थापना हम कुछ स्वयं सिद्ध मूल सत्यों के आधार पर निगमनात्मक कड़ियां बनाते हुए कर सकते हैं। क्रमबद्ध उत्पत्ति इन कड़ियों को जोड़ने में मदद करती है और अंतः प्रज्ञा मूल सत्यों का उद्घाटन करती है। अंतः प्रज्ञा उत्पत्ति की प्रत्येक कड़ी की गारंटी भी देती है। जो भी गणितीय सत्य को समझता है वह यह भी समझता है कि ये सत्य अनिवार्य हैं और प्राकृतिक तथ्यों पर निर्भर नहीं करते। इसे इस प्रकार भी समझ सकते हैं कि किसी रेखागणितिय प्रमेय को दर्शाने के लिए हम चित्रों का इस्तेमाल तो कर सकते हैं परंतु हम उसे प्रमेय का प्रमाण नहीं मान सकते। अगर मापने का चित्र उन संबंधों को न दर्शाये जिनका कि प्रमेय में दावा किया गया हो, तो हम इस आधार पर सिद्धांत को गलत नहीं ठहरा सकते। बल्कि हम यह मानें कि चित्र तो प्रमेय में अभिव्यक्त सत्य का केवल एक उदाहरण मात्र है, या कि उसकी तरफ केवल एक इशारा भर कर सकता है। भौतिक बिन्दु का एक आकार होता है (उसमें फैलाव होता है) और भौतिक रेखा में मोटाई होती है, परंतु

गणितीय बिन्दु और रेखा भौतिक नहीं, एक आदर्श हैं (विचार मात्र हैं)। इन्हें हम समझ तो सकते हैं लेकिन भौतिक संसार में इनके सचमुच के उदाहरण नहीं दे सकते। भौतिक वस्तुएं आदर्श गणितीय धारणाओं के केवल कम या ज्यादा निकट आ सकती हैं। और ये जितना आदर्श के निकट आती हैं हम उन्हें केवल उतना ही समझ सकते हैं। ऐसे कथन जो प्राकृतिक वस्तुओं का वर्णन ही करते हैं स्वभावतः 'कमोबेश सही' होते हैं। वे 'अनिवार्य सत्य' नहीं बल्कि 'परिस्थितिक सत्य' भर होते हैं। उनकी सच्चाई विशिष्ट अवलोकनों के साक्ष्य पर निर्भर होती है और इन्हें अनुभव के आधार पर गलत ठहराया जा सकता है।”

इस प्रकार कहा जा सकता है कि “गणितीय सत्य अनुभव पर आश्रित नहीं होते, हालांकि अनुभवों से हमें इनका कुछ अहसास (या आभास) हो सकता है। गणितज्ञों को प्रयोगशाला की जरूरत नहीं होती, न वे सर्वेक्षण करते हैं, न वे आंकड़े इकट्ठे करते हैं। उनका काम तो केवल कलम और कागज से चल जाता है और इसी तरह वे सबसे ज्यादा स्थाई सत्यों तक पहुंचते हैं, ऐसे सत्य जो अनुभव द्वारा गलत सिद्ध नहीं किये जा सकते।”

विज्ञान में गणित से हटकर अलग तरीके से ज्ञान निर्मित होता है। विज्ञान में कुछ अमूर्त विचार होते हैं जिन्हें हम प्रकृति में देख सकते हैं और अवलोकन तथा प्रयोगों द्वारा उनकी सत्यता की जांच भी की जा सकती है। गणित व विज्ञान में यह फर्क है कि कुछ अवधारणाओं के संकेत ही प्रकृति में पाये जा सकते हैं जबकि विज्ञान में उन्हें वास्तविक रूप में देखा जा सकता है। इस तरह से सामाजिक अध्ययन से संबंधित कथन जैसे विधवा विवाह में न कोई अमूर्त संकल्पना है न कोई प्राकृतिक फेनोमिना। हां, उसकी कुछ निर्धारित परिभाषायें हैं जिनका अन्वेषण हम आज के नजरिये से करते हैं। इतिहास में भी पहले से कुछ तथ्य परिभाषाएं होती हैं कुछ स्थापित सत्य होते हैं जिनका अध्ययन हम आज के नजरिये से करते हैं। उन्हें कुछ स्रोतों द्वारा समझने का प्रयास करते हैं।

इस अभ्यास के माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया कि प्रत्येक विषय की अपनी प्रकृति होती है। इसकी झलक प्राथमिक शिक्षा में बच्चों को कैसे दें ? इस पर सोचने-विचारने व काम करने की जरूरत महसूस हुयी क्योंकि यह देखा जाता है कि प्राथमिक स्तर पर विद्यालयों में सभी विषयों को एक ही तरह से पढ़ाया-सिखाया जाता है और पिछले दस वर्षों से विभिन्न सरकारी कार्यक्रमों एवं परियोजनाओं के संचालन के उपरांत भी इस दिशा में कोई आमूल-चूल परिवर्तन नजर नहीं आया है। जबकि अधिकांश राज्यों में विश्व बैंक द्वारा वित्त पोषित जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम

के तहत नए पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकें बन चुकी हैं। कई प्रकार के शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम हो चुके हैं लेकिन प्राथमिक विद्यालयों की स्थिति वही है और चीजें पुराने ढर्रे पर चल रही हैं।

इस कार्यशाला के दौरान यह समझ और स्पष्ट हुई कि प्रत्येक विषय की प्रकृति को समझा जाये और वह अपने समझे जाने के लिए किस प्रकार के कौशलों की मांग करता है ? उन्हें बच्चों में किस तरह विकसित किया जाये ? इसकी स्पष्टता जरूरी है, जैसे - गणित के अंतर्गत प्रतीकों को समझने व उसके साथ काम करने का कौशल, अमूर्त अवधारणाओं को समझने का कौशल, तार्किक योग्यता एवं स्थानिक अवधारणाओं की समझ आदि के विकास पर जोर होना चाहिए। विज्ञान के अंतर्गत प्रकृति के अवलोकनों को ले पाना, उसे व्यवस्थित कर पाना एवं उसके आधार पर कोई सिद्धांत बना पाना आदि कौशलों को विकसित होने के लिए बच्चों को मौके मिलने चाहिए। जबकि सामाजिक अध्ययन के अंतर्गत बच्चों में अपने आसपास के परिवेश में बदलाव का अहसास, उसके प्रति संवेदनशीलता, कुछ जानकारियां एकत्रित कर पाना, उसे व्यवस्थित व विश्लेषित कर पाना, इसके आधार पर कुछ निष्कर्ष निकाल पाना तथा आसपास की घटनाओं के प्रति समालोचनात्मक नजरिया रख पाना आदि कौशलों के विकास की बात ध्यान में रखी जानी चाहिए।

जबकि वास्तव में होता यह है कि हम सोचते हैं कि पाठ्य-पुस्तकों में ऐसा ही दिया हुआ है, हमें ऐसा ही करना पड़ेगा और हम इसे बदल नहीं सकते। इस कारण शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम एक निश्चित ढर्रे पर चलता रहता है और हमें शिक्षकों की सोच व कक्षाओं में कोई बदलाव नहीं दिखता। जबकि जरूरत इस बात की है कि यह समझा जाये कि पाठ्यपुस्तकों में बिना परिवर्तन किए हुए हम किस तरह के विकल्प प्रस्तुत कर सकते हैं ? जैसे - विज्ञान में बच्चों के आसपास से परिवेश से संबंधित प्रयोगों और अवलोकनों को कैसे जोड़ सकते हैं ? विज्ञान पढ़ाने के अंतर्गत शिक्षकों की यह समझ कैसे बनायी जा सकती है ? इसी तरह से सामाजिक अध्ययन में भी स्थानीय चीजों से लेकर बात कैसे शुरू की जा सकती है ? यहां इस बात की बहुत स्पष्टता आवश्यक है कि विषयगत अनुशासन को कैसे ध्यान में रखा जाए ? इन बातों के संकेत कार्यशाला में निम्न तीन प्रश्नों के द्वारा उभारे गये -

1. किसी पाठ को पढ़ा देने का मतलब क्या है ?
2. किसी पाठ में उस विषय की प्रकृति कैसे शामिल होनी चाहिए ?
3. पाठ्यपुस्तक के पूरे पाठ को इस्तेमाल न कर, शिक्षक

उससे संबंधित कुछ मुद्दों पर कैसे काम कर सकते हैं ?

इन प्रश्नों को आधार बनाकर प्राथमिक कक्षाओं में काम कैसे किया जाये ? इन पर हम सभी को गहराई से सोचने-विचारने की आवश्यकता महसूस हुई।

कार्यशाला के एक सत्र में मानचित्र से संबंधित अभ्यास कराए गए। इसके अंतर्गत समूहवार प्रतिभागियों को कुछ दिशा निर्देश देकर मैदान में छुपाई गई कुछ चीजों को ढूंढना था तथा उसके बाद उसका नक्शा तैयार करना था। यह देखा गया कि प्रतिभागियों को शुरूआत में दिशा तय करने और उसको मानचित्र में उतारने में दिक्कत आ रही थी। इस चर्चा के दौरान मानचित्र बनाने की दिक्कतें उभरीं जैसे - दक्षिण से दक्षिण में कैसे जाएं ? क्योंकि दिशा कोई निरपेक्ष अवधारणा नहीं है। इसे अपने आप से नहीं बताया जा सकता। इसे किसी वस्तु से जोड़कर ही बताया जा सकता है। अतः दिशा एक सापेक्ष अवधारणा हुई जो बार-बार अभ्यास करने से ही पक्की होती है। इस अभ्यास से इस बात का अहसास हुआ कि बच्चों को प्राथमिक स्तर पर नक्शा पढ़ने के अभ्यास किस प्रकार कराए जाएं ? जिससे उनकी नक्शा पढ़ने के बारे में समझ बने। जबकि प्राथमिक स्तर पर नक्शा पढ़ने व उसे समझने के कौशलों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। केवल नक्शों के तथ्यों को याद कराकर पाठ पढ़ाने की इतिश्री मान ली जाती है और बच्चों में मानचित्र के प्रति कोई समझ विकसित नहीं होती। इस सत्र में प्रश्न उभरे कि नक्शों के बारे में बच्चे का पूर्व ज्ञान क्या है ? बच्चों को उसे बनाने में क्या-क्या समस्याएं आती हैं ? कक्षा तीन की पाठ्यपुस्तकों में बच्चों के लिए किस तरह के नक्शों के अभ्यास हों ? सभी को इस पर समझ बनाने की आवश्यकता लगी।

इसी तरह गणित में संख्या, संख्यांक, अंक, संख्यानाम आदि की परिभाषाओं के माध्यम से गणित विषय की समझ बनाने का प्रयास किया गया एवं शिक्षक को विषय की स्पष्ट समझ न होने के कारण बच्चों को पढ़ाने में आने वाली कठिनाइयों की तरफ इशारा किया गया। क्यों बच्चों में सर्वप्रथम इन अवधारणाओं को स्पष्ट करना जरूरी है ? उदाहरण के लिए, सामान्य रूप से बच्चों के साथ बिना भिन्न संख्याओं की अवधारणा को स्पष्ट किए उसकी संक्रियाओं पर काम शुरू कर दिया जाता है क्योंकि जब हम भिन्न संख्याओं की परिभाषा करते हैं तब उसकी परिभाषा पहले की संख्या से अलग होती है। इस तरह से गणित में जब-जब संख्याओं से संबंधित नई अवधारणाओं को प्रस्तुत किया जाता है तब-तब उसकी परिभाषाओं को पुनर्परिभाषित किया जाता है। इसी प्रकार भिन्न के प्रश्नों में बच्चों को आने वाली दिक्कतों की तरफ भी इशारा किया गया है कि हम शुरू में बच्चों को बताते हैं कि गुणा के दौरान

संख्याएं बढ़ती हैं तथा भाग में संख्याएं घटती हैं। लेकिन भिन्न संख्याओं के साथ ऐसा नहीं होता। इसी तरह से गणित की चारों संक्रियाओं जोड़-घटाना, गुणा-भाग आदि की अवधारणाओं पर भी संक्षिप्त चर्चा की गई।

विज्ञान विषय को स्पष्ट करने के लिए प्रतिभागियों के समूह बनाकर सोचने का काम दिया गया कि आम जीवन में बल व गति के कुछ उदाहरण देते हुए बल व गति के संबंधों को स्पष्ट करें। इस समूह कार्य के उपरांत इस बात पर चर्चा हुई कि एक चॉक को ऊपर फेंकने पर उस पर बल कहां-कहां लग रहा है और उससे उसकी गति पर क्या प्रभाव पड़ रहा है? इस चर्चा में कई तरह की बातें उभर कर आयीं कि चॉक फेंकने की शुरुआत में सबसे अधिक बल लगा और तब उसकी गति में तेजी थी। धीरे-धीरे उसकी गति गुरुत्वाकर्षण बल के कारण कम हो गई और साथ ही लगने वाले घर्षण बल के कारण शून्य हो गया जिससे चॉक नीचे आ गिरी। इस तरह से समूह के सदस्यों से अन्य बातें भी उभर कर आयीं। इस चर्चा में गुरुत्वाकर्षण बल, घर्षण बल, त्वरण, गतिज ऊर्जा व स्थितिज ऊर्जा जैसे शब्द भी इस्तेमाल हो रहे थे। अंत में इस समूह चर्चा से यह स्पष्ट करने की कोशिश की गयी कि विज्ञान में किस तरह से परिभाषाएं बनती हैं और कैसे उस परिभाषा को फिर पुनर्निर्मित किया जाता है? कई उदाहरणों से यह स्पष्ट किया गया तथा यह समझ विकसित की गई कि विज्ञान में ज्ञान स्थायी नहीं है, वह बदलता रहता है। जैसे कि, पहले यह माना जाता था कि सूर्य पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाता है, बाद में इसका खंडन किया गया और नया सिद्धांत प्रतिपादित किया गया। इस सत्र के दौरान यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया कि विज्ञान के सिद्धांतों के बनने की प्रक्रिया में हम गुणात्मक विवरणों से गणनात्मक विवरणों की ओर बढ़ते हैं। इसके साथ ही कई अवधारणाएं जुड़ती जाती हैं तथा परिभाषाएं धीरे-धीरे जटिल होती जाती हैं। इसके लिए हमें पूर्व ज्ञान व नए ज्ञान के अंतर्विरोध को समझना होता है। इसका एहसास हम बच्चों को कैसे दें? बच्चों के मन में किसी अवधारणा के बारे में क्या समझ रहती है? वह अपना सिद्धांत कैसे बनाता है? इस बारे में हम कक्षा में कैसे कार्य करें? इसी क्रम में यह भी सोचने का मौका मिला कि बच्चों को गणित व विज्ञान सिखाने में किस तरह से उनके पूर्व ज्ञान को जोड़ें? उन्हें कक्षा में किस तरह अपनी सोच व तरीके इस्तेमाल करने का मौका मिले। इस दिशा में प्राथमिक विद्यालयों में काम किए जाने की जरूरत है।

कार्यशाला के एक सत्र में सामाजिक अध्ययन व विज्ञान की तीसरी, चौथी, पांचवी की पाठ्यपुस्तकें समूह बनाकर दी गईं और

इन पुस्तकों के एक-एक पाठ जैसे राजस्थान के प्राकृतिक भाग, पोषण व स्वास्थ्य आदि समूहवार दिए गए तथा कार्य दिया गया कि इन पाठों को हम कक्षा में कैसे पढ़ायेंगे? इन पाठों में किस प्रकार की दिक्कतें हैं? इसे चर्चा कर तय करें। पाठ्यपुस्तकों पर कार्य व समूह में चर्चा के दौरान यह देखने को मिला कि पाठ्यपुस्तकों के पाठों की भाषा बच्चों के लिए बहुत कठिन थी और एक पाठ में कई सारी अवधारणाओं का इस्तेमाल किया गया था। जैसे - कक्षा तीसरी की पर्यावरण अध्ययन की पाठ्यपुस्तक में राजस्थान के प्राकृतिक भाग के अंतर्गत तापमान, वायु दाब, वायुवेग, समुद्र तट से ऊंचाई आदि बातें दी गई थीं जो किसी भी शिक्षक के लिए तीसरी कक्षा में स्पष्ट कर पाना मुश्किल है। लेकिन मुख्य बात यह है कि हम सब मान लेते हैं कि बच्चे इन चीजों को समझ जाएंगे और इस समझने को हम केवल प्रश्नों के उत्तर याद कर लेने तक सीमित मानते हैं? पाठ्यपुस्तकों के अभ्यासों से यह बात भी जाहिर होती है कि पाठ्यपुस्तक भी केवल बच्चों के प्रश्नों के उत्तर याद किये जाने की ही मांग करती हैं। उनमें ऐसे अभ्यास देखने को नहीं मिले जिससे बच्चे में अवधारणाओं को समझने के लिए कुछ कौशलों के विकास की बात की जा रही हो। अगर इसे हम सामाजिक अध्ययन व विज्ञान विषय की प्रकृति के अनुसार देखें तो उसका कोई तालमेल नहीं दिखाई पड़ता और ये सब बातें केवल शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम और पाठ्यक्रम के वक्तव्यों तक ही सीमित रह जाती हैं। इस सत्र के अंतर्गत यह बात भी उभारने की कोशिश की गई कि अगर हमारी पाठ्यपुस्तकें इस तरह की हैं तो हम उनसे कैसे निपटें? हम इसके क्या विकल्प प्रस्तुत कर सकते हैं? इस दिशा में हमें अपने काम का एजेंडा बनाना चाहिए।

कार्यशाला में भाषा व उससे जुड़े पहलुओं - भाषा की प्रकृति, भाषा की संरचना, बच्चों के सीखने की क्षमता, बच्चों की भाषा सीखने की प्रक्रिया, पढ़ना व लिखना सीखना, भाषा व विचार, भाषा व लिपि, पहली भाषा व दूसरी भाषा, भाषा व राजसत्ता, भाषा बोली व मानक भाषा आदि पर विस्तृत चर्चा की गई। बच्चों की भाषा सीखने की क्षमता के अंतर्गत इस तथ्य पर विचार किया गया कि बच्चे भाषा के कुछ नियम पकड़कर, भाषा की जटिल संरचना को स्वतः पकड़ लेते हैं और इसे उनके स्कूल आने के पूर्व की भाषा में आसानी से महसूस किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, चार वर्ष का बच्चा जानता है कि उसकी भाषा की ध्वनियां कैसे बोली जाएंगी? अपितु वह यह भी जानता है कि यह ध्वनियां किस क्रम में आ सकती हैं? और किस क्रम में नहीं? ये सब नियम बच्चे के दिमाग में सुव्यवस्थित ढंग से उपलब्ध

रहते हैं। इसके साथ ही यह गौर करने की बात है कि बच्चे सार्थक शब्द ही बोलते हैं और वे जब नये शब्द भी बनाते हैं तो वे ध्वनि संरचना के नियमों का उल्लंघन नहीं करते। बच्चे को यह नियम भी पता रहते हैं कि हिन्दी के अधिकतर शब्द 'कल, नल, काला, बाल, कील, दरवाजा, किताब, पेड़, फूल, आदि जैसे शब्द होंगे। यानी उनकी संरचना व्यंजन-स्वर-व्यंजन-स्वर' ही होगी। इसे समझने के लिए परिणाम शब्द की ध्वनि संरचना को देखें - प् + अ + र् + इ + ण् + आ + म। बच्चे यह नियम भी पकड़ लेते हैं कि हिन्दी शब्द के अंत में 'अ' (जो लिखति हिन्दी में सदैव दिखाई देता है) नहीं बोला जाएगा। 'कल' को 'क्+अ+ल् बोलते हैं न कि 'क्+अ+ल्+अ' जैसा कि लिखा गया है। इन बातों से यह समझ मिलती है कि बच्चा भाषा की जटिल संरचना पर आसानी से अपना अधिकार प्राप्त कर लेता है और इसे वह स्वतः सीख लेता है। इस प्रकार ये तथ्य हमारे इन दावों पर प्रश्नचिन्ह लगाते हैं कि बच्चे भाषा अनुकरण व नकल से सीखते हैं क्योंकि ऐसी बातें पहले प्रतिभागियों से उभर कर आ रही थीं।

भाषा विज्ञान की दृष्टि से यह भी स्पष्ट किया गया कि संसार की विभिन्न भाषाओं में व्यंजन-स्वर, स्वर-व्यंजन का क्रम बना रहे, यानी दो स्वर या दो व्यंजन साथ-साथ न आएँ। इस व्यवस्था के लिए अलग-अलग भाषाएं अलग-अलग प्रावधान करती हैं। बांग्ला में सीता का कहने के लिए केवल 'र' जोड़ते हैं, 'सीतार'। लेकिन राम का कहने के लिए केवल 'र्' जोड़ने से काम नहीं चलेगा क्योंकि राम में दो व्यंजन साथ-साथ आ जायेंगे। इसलिए 'एर' का प्रयोग, 'र' से पहले स्वर, 'रामेर'।

अंग्रेजी में भी यही नियम भाषा की पूरी ध्वनि-संरचना पर फैला हुआ है। ए बाँय कहते हैं। लेकिन एन एग; दो स्वरों के बीच 'न्' आ गया। इंग्लैण्ड की अंग्रेजी में कार-पार्क में दोनों 'र्' का उच्चारण नहीं होता। लेकिन कार-इंजिन में 'र्' का उच्चारण होगा। 'स्टेशन' को पंजाब में 'सटेशन', उत्तर प्रदेश में 'इस्टेशन' व हरियाणा में 'टेशन' कहते हैं। दो व्यंजन साथ-साथ नहीं भाते, बोलने को तो बोल ही सकते हैं। अंग्रेजी में तो दो स्वर साथ होने पर 'र्' अक्सर आसमान से टपक पड़ता है।

भाषा के अंतर्गत चर्चा के दौरान बच्चों के अनुकरण के कुछ उदाहरण पूछे गए और काफी विचार-विमर्श के दौरान कोई भी प्रतिभागी बच्चों के अनुकरण व नकल करके भाषा सीखने के सटीक उदाहरण नहीं दे पाया। कार्यशाला के प्रतिभागी ने यह प्रश्न उठाया कि बच्चे अपने आसपास के परिवेश से बहुत सी गालियों के शब्द भी सीख लेते हैं जैसे - साले। इस बात पर चर्चा हुई कि

इस प्रकार के उदाहरण दिये जायें कि एक आठ साल का बच्चा साले शब्द का प्रयोग कहां-कहां व कैसे-कैसे वाक्यों में करेगा? इस पर कई तरह के वाक्य उभर कर आए। उदाहरण के लिए बच्चा अपने दोस्त के लिए कह सकता है - अबे, साले तू आ गया। साले, दरवाजा खुला है, अंदर आ जा। दरवाजा खुला है साला। तितली उड़ गई, साली आदि वाक्य। यहां इस बात को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि इस तरह के वाक्यों का प्रयोग बच्चों की सृजनशीलता को दर्शाता है और इस तरह के शब्दों के प्रयोग से भाषा में नये संदर्भ जुड़ते हैं, अर्थ बनते हैं और नये विचार पैदा होते हैं। इस तरह भाषा जीवंत बनी रहती है। इस तरह शब्दों का प्रयोग नहीं हो तो भाषा मृतप्रायः हो जाए। इसी तरह से हम लोग भी शब्दों का भिन्न-भिन्न संदर्भों में प्रयोग करते हैं और इससे भाषा समृद्ध होती है। बच्चों के शब्दों के ग्रहण करने और उसे अपने संदर्भों में प्रयोग के कुछ उदाहरण बच्चों की घर की बातचीत से ही उभरकर आए। जैसे कि हम अपने घरों में जो बातचीत करते हैं, उस अधिकतर बातचीत का बच्चे से कोई लेना देना नहीं होता है लेकिन उस बातचीत में आए शब्दों को बच्चा अपने आप ग्रहण कर लेता है तथा उसे वह अपनी रोजमर्रा की भाषा में कई संदर्भों के दौरान प्रयोग करता है और उन शब्दों के प्रयोग व अर्थ को खुद निर्मित करता है। इस तरह से बात की पुष्टि होती है कि बच्चा स्वाभाविक रूप से भाषा अपने आप सीखता है।

बच्चों के भाषा सीखने की इस तरह की स्वाभाविक प्रक्रिया को हमें कक्षाओं में प्रयोग करने की जरूरत है। जबकि प्राथमिक विद्यालयों में केवल यह होता है कि बच्चों के भाषा शिक्षण के दौरान हमारा पूरा ध्यान उन्हें केवल वर्णमाला, मात्रा याद करवाने में जाता है और इस प्रक्रिया के दौरान हम बच्चों की भाषा सीखने की प्रक्रिया को सार्थक बनाने की बजाए उसे अर्थहीन बना देते हैं। इस प्रकार बच्चों के भाषा सीखने की प्रक्रिया केवल भाषा के यांत्रिक कौशलों के अधिकार तक ही सीमित हो जाती है।

बच्चों को पढ़ना सिखाने का अर्थ पढ़कर समझ पाना तथा लिखना सिखाने का अर्थ लिखकर व्यक्त कर पाना-पर समझ स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। लेकिन प्राथमिक कक्षाओं में इस्तेमाल किये जाने वाले तरीकों से बच्चों का भाषा सीखना एक जीवन्त अनुभव न बनकर एक नीरस प्रक्रिया बन जाता है। इन कारणों से यह देखने को मिलता है कि बच्चों की लिखित अभिव्यक्ति और खुद पढ़कर समझने की क्षमताओं में दिक्कत आती है और अधिकतर बच्चे पांचवी कक्षा उत्तीर्ण करने के बाद भी निर्धारित कौशलों को प्राप्त नहीं कर पाते तथा आगे की कक्षाओं में पिछड़ जाते हैं एवं

काफी हद तक इन कारणों से अधिकतर बच्चे स्कूल आना ही छोड़ देते हैं। इसके अंतर्गत यह बात जोड़ी गई कि पढ़ना सीखने का सबसे अच्छा तरीका यही है कि बच्चे वही चीज पढ़ें जो उनके लिए अर्थ रखती हो। बिना किसी संदर्भ के वर्ण पहचानने, बारहखड़ी याद करने व शब्दार्थ याद करने से कोई लाभ नहीं। अगर बच्चों के लिए उपयुक्त मनोरंजक, सार्थक व चुनौतीपूर्ण संदर्भ नहीं होंगे तो बच्चे पढ़ना नहीं सीख सकेंगे। इसलिए इस बात की जरूरत है कि बच्चों के लिए कक्षा में अच्छी संदर्भयुक्त पाठ्यसामग्री के प्रयोग की बात पर जोर दिया गया। इसे विभिन्न स्रोतों से इकट्ठा किया जा सकता है।

कार्यशाला में भागीदारी से चर्चा किए गए बिन्दुओं को हम सभी को अपनी संस्था की सोच, शिक्षण-प्रशिक्षण कार्यक्रमों, सामग्री निर्माण के दौरान जोड़ने की जरूरत है। कार्यशाला में उपजी समझ को अपनी-अपनी संस्था के अन्य सदस्यों के साथ शेयर करने, चर्चा करने की आवश्यकता है। जिसके शैक्षिक मुद्दों पर संस्थाओं की एक संस्थागत सोच विकसित हो सके और संस्था का एक पर्सपेक्टिव बन सके। इसके साथ संस्थाओं की ओर से यह अपेक्षा उभर कर आई कि यदि संस्थायें आपस में मिलजुल कर काम करें तो प्रत्येक संस्था के अपने क्रियाकलापों को और सुदृढ़ बनाने का मौका मिलेगा। इस बात को ध्यान में रखते हुए यह कार्य किया जा सकता है कि कुछ संस्थायें आपस में छोटे-छोटे कुछ अध्ययन, कुछ सामग्री तैयार करें, जिसे अन्य लोगों में प्रचारित-प्रसारित किया जा सके।

कार्यशाला में विद्याभवन सोसायटी-उदयपुर व जयपुर, विद्या भवन एजुकेशन रिसोर्स सेंटर - उदयपुर, नालंदा-लखनऊ, ज्ञानशाला-अहमदाबाद, सेवा मंदिर-उदयपुर, एकलव्य-भोपाल, शेल हजीरा-सूरत आदि संस्थाओं से जुड़े करीब पैंतालिस प्रतिभागियों ने भाग लिया। कार्यशाला में श्री हृदयकांत दीवान (विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर), श्री रमाकान्त अग्निहोत्री (दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली), श्री रोहित धनकर (दिगंतर, जयपुर), श्री कमल महेन्द्र (एकलव्य, भोपाल) श्री अरविन्द सरदाना (एकलव्य, देवास) ने संदर्भ व्यक्ति के रूप में विचार-विमर्श को आगे बढ़ाया।

अंतिम दिन सभी प्रतिभागियों ने कार्यशाला से बनी अपनी समझ व आगे की योजना को बड़े समूह में प्रस्तुत किया और यह महसूस किया कि इस तरह के आयोजन नियमित रूप से होते रहें जिससे सभी को अपनी समझ को और पैनी करने का मौका मिलता रहे तथा अपने कार्यों के लिए दृष्टि भी मिल सकेगी, जो सीधे बच्चों के साथ शिक्षण कार्य से जुड़े हैं उन्हें भी बच्चों के बारे में एवं सीखने-सिखाने को और बारीकी से देखने-समझने का अवसर

मिलेगा। इसके साथ ही प्रतिभागियों की तरफ से यह सुझाव आया कि आगामी कार्यशालाओं की विषयवस्तु से संबंधित सामग्री पहले से ही पढ़ने के लिये प्रेषित कर दी जाये ताकि कार्यशाला में तैयारी से आ सकें एवं समस्याओं को चिन्हित करने का वक्त मिल जायेगा। इसके अलावा कार्यशालाओं में रिसर्च मैथेडोलॉजी, विषयपरक फोकस चर्चाएं, शिक्षाशास्त्रियों व मनोविज्ञानियों जैसे - पियाजे, वॉयगोत्सकी, जॉन डिवी आदि पर चर्चा सत्र हों जिससे सहभागी संस्थाओं में शैक्षिक विमर्श ज्यादा गहन हो पाये।

कार्यशाला में चर्चाओं के दौरान बहुत से सवाल उठे। जिन पर अभी और सोचने की आवश्यकता है जैसे, बच्चे का स्थानीय परिवेश का दायरा क्या है? स्थानीय परिवेश की कौन-कौन सी चीजें बच्चों के काम की हैं? कौन-कौन सी नहीं? क्या उनकी कोई सूची बनाई जा सकती है? यह विचारणीय मुद्दा है क्योंकि आमतौर पर बच्चों के स्थानीय परिवेश को हम बच्चों के आसपास की प्राकृतिक चीजों से ही ज्यादा रेखांकित करते हैं। लेकिन क्या हमने बच्चों के माता-पिता के पीढ़ियों द्वारा संरक्षित ज्ञान व अनुभवों की ओर अपना ध्यान आकर्षित किया है? इस पर भी सोचने की जरूरत है। कुल मिलाकर इस रपट के माध्यम से कार्यशाला में उभरी मूल बातों को यहां उभारने का विनम्र प्रयास किया गया है। इसमें कुछ बातें छूट गई हो सकती हैं। इस चर्चा को आगे बढ़ाने के लिए आप सब भी कुछ न कुछ जोड़ सकते हैं। चाहे आप प्रतिभागी रहे हों या इस रपट के पाठक। ♦

जूते

□ नरेश सक्सेना

जिन्होंने खुद नहीं कीं अपनी यात्राएं
दूसरों की यात्रा के साधन ही बने रहे
एक जूते का जीवन जिया उन्होंने
यात्रा के बाद
उन्हें छोड़ दिया गया घर के बाहर

(‘समुद्र पर हो रही है बारिश’ संग्रह से साभार)